REVIEW OF RESEARCH
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF) UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514 ISSN: 2249-894X
VOLUME - 8 | ISSUE - 1 | OCTOBER - 2018

महात्मा गाँधी की दृष्टि में स्त्री–सशक्तीकरण का नया आयाम

शशिकान्त मिश्र
शोध छात्र, दर्शनशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद.

बीसवीं सदी के भारतवर्ष में स्त्री–मुक्ति की लड़ाई लड़ने या स्त्री–पुरूष समता का देशव्यापी जागरण लाने में महात्मा गाँधी की महत्वपूर्ण भूमिका रही है, लेकिन आज पश्चिमी चिन्तन की नारीवादियों के वह 'अर्द्धनग्न फकीर' अपने सवाल के लिए 'आउट ऑफ डेट' ही प्रतीत होते हैं। आज के समय में जिस स्त्री–विमर्श की आँधी हमारे साहित्य एवं राजनीति में चल पड़ी है। उसमें गाँधी जी के कार्यों का कहीं कोई उल्लेख नहीं करता। उल्टे गाँधी जी की जो छवि प्रस्तुत की जाती है, वह उन्हें स्त्री विकास के लिये अवरोध ही सिद्ध करती है। इसमें भी अधिक खेदजनक बात तो यह हैं कि इन दिनों गाँधी जी के स्त्री विषयक विचारों एवं कार्यों की चर्चा की जाती हैं तो वह सिर्फ ब्रह्मचर्य के प्रयोग तक ही सीमित रहती है।

उन्नीसवीं सदी के जिस उत्तरार्द्ध में गाँधी जी ने होश संभाला वह स्त्रियों के मामले में अमानवीयता की हद तक रूढ़िवादी एवं दकियानूस था। यह सही है कि इस धरती पर एक समय स्त्री–अस्मिता एवं तेजस्विता को प्रतिष्ठित करने वाली सीता, सावित्री, शकुन्तला, दमयन्ती, द्रौपदी जैसी स्त्रियाँ पैदा हुईं तो विद्ववता, चिंतन के क्षेत्र में स्त्री प्रतिभा का प्रमाण देने वाली मैत्रेयी, गार्गी, जैसी स्त्रियाँ भी हुई। लेकिन धीरे–धीरे पुरूष–वर्चस्व की गिरफ्त में जकड़ता हुआ भारतीय समाज सामन्तवाद के उत्कर्षकाल में स्त्रियों के लिए करागृह बन गया। एक समय पति का स्वयं वरण करने का अधिकार रखने वाली स्त्रियाँ सामन्ती सभ्यता के बढ़ते चरण में कुलवधू के नाम पर घर की चारदीवारी तक सीमित कर दी गयी।

उन्नीसवीं सदी के भारतीय समाज में अशिक्षा, बाल–वधू एवं बाल–विधवा, पर्दा प्रथा, देवदासी प्रथा, दहेज आर्थिक पराधीनता जैसी नाना कुरीतियों के जाल में हिन्दुस्तान की स्त्रियाँ अशक्त–निरीह होकर दम तोड़ रही थीं। भारतीय संदर्भ में स्त्रियों की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक स्वतंत्रता एवं समानता के अधिकारों के प्रति जागरूकता गाँधी जी को इंग्लैण्ड की आंदोलनकारी महिलाओं ने (अपने मताधिकार के प्रयोगों) कराया, उसी का परिणाम हुआ कि उन्होनें दक्षिण अफ्रीका से लेकर भारतवर्ष तक अपने सत्याग्रह संघर्ष में स्त्रियों की सहभागिता के लिए वैसा ही खुला रास्ता रखा जैसा पुरूषों के लिए था।

दक्षिण अफ्रीका में प्रवास के दौरान ही गाँधी जी भारतीय समाज में स्त्रियों के लिए समुचित शिक्षा दिये जाने की आवश्यकता को अच्छी तरह समझ चुके थे। दक्षिण अफ्रीका की तरह यहाँ भी स्त्री–शिक्षा के पक्ष मे जन जागृति लाने के लिए गाँधी जी ने लेखन–भाषण का सहारा लिया। गाँधी जी ने आंग्लभाषा के एक ग्रन्थकार श्री यूसुफ अली का हवाला देते हुए 'स्त्री शिक्षा का महत्व' नाम से एक लेख में लिखा–स्त्री पुरूष की अर्द्धांगिनी मानी जाती है; यदि हमारा आधा शरीर मुर्दा हो जाए, तो हम मानते हैं कि हमें लकवा मार गया है, और हम बहुत से कार्यों के लिए अयोग्य हो जाते हैं। इसी प्रकार स्त्री का जो उपयोग होना चाहिए यदि वह न हो, तो सारे भारत को लकवा मार गया है, यही मानना पड़ेगा और ऐसी हालत में यदि भारत दूसरे देशों के आगे टिक न सके तो उसमें आश्चर्य की बात कौन सी है? इसी तरह का विचार हर माता–पिता को अपनी लड़की के बारे में और सारे भारतवासियों को स्त्री समाज के बारे में करनी चाहिए। हमें ऐसी हजारों स्त्रियों की जरूरत है जो मीराबाई और राबिया की बराबरी करें।[1]

गाँधी के अनुसार शिक्षा का अर्थ है जिसकी बुद्धि निर्मल, शान्त हो, जिसकी तर्कबुद्धि इंजिन के हर हिस्से की तरह सक्षम, मजबूत और सहज हो, जिसका मस्तिष्क प्रकृति के मौलिक नियमों के ज्ञान से भरपूर हो, जिसकी वृत्तियाँ इस तरह प्रशिक्षित हो कि प्रबल इच्छाशक्ति से सक्रिय रहें, कोमल भावनाओं से निर्देशित हो, जो बुराईयों से नफरत करता हो और सबको अपना समझता हो, यही आरम्भिक शिक्षा है।

जाहिर है गाँधी जी स्त्रियों के लिए जिस शिक्षा को उपयुक्त वांछनीय समझ रहे थे, वह उन्हें निर्भीक, साहसी, तेजस्वी, घर, समाज, राष्ट्र के दायित्वों के प्रति जागरूक एवं विवेकवान बनाने वाली थी। उनकी दृष्टि में स्त्रियों को पढ़ाने–लिखाने का मकसद उन्हें व्यावसायिक बनाना या पुरूषों द्वारा किये जाने वाले कार्यों में दक्ष बनाना नहीं था।

गाँधी जी स्त्रियों में सीता, सावित्री, द्रौपदी जैसी स्त्रियों का साहस, आत्मबल देखना चाहते थे और इन गुणों के विकास में जो भी बाधाएँ थी उन्हें अमान्य करने, अपदस्थ करने, को वे हर पल तत्पर रहे। भारतीय समाज में कई शताब्दियों से स्त्रियों की स्वतंत्रता, खुलेपन, उन्मुक्त विचरण आदि का गला घुटने वाली एक ऐसी ही कुरीति, पर्दा प्रथा के रूप में विराजमान थी। इस पर्दा प्रथा ने स्त्री–जाति को भय एवं दासता के पिंजरे में कैद रखा था।

गाँधी जी ने लिखा है कि–हमें यह दिखा देना है कि हम पर्दे में रहने पर भी मर्यादा की रक्षा कर सकते हैं, जिन लोगों मे पर्दे का रिवाज नहीं है, कोई नहीं कह सकता कि उनमें मर्यादा का ख्याल कम है। पुरूष की कुवृत्ति से स्त्रियों को बचाने का इलाज पर्दा नहीं है, बल्कि पुरूष की पवित्रता है। पुरूष को पवित्र बनाने में स्त्री बहुत सहायक हो सकती है। पर्दे में रहने वाली दबी हुई स्त्री पुरूष को भला कैसे पवित्र बना सकती है। स्त्रियों को पर्दे में रखना, मानों उनमें एक बुराई पैदा करना है गाँधी जी मत यह है कि पर्दा सदाचार का पोषक नहीं बल्कि घातक है। सदाचार के पोषण के लिए, सदाचार की शिक्षा, सदाचार के वातावरण और नीतियुक्त आचरण की आवश्यकता है।[2]

गाँधी जी भारतीय साहित्य एवं संस्कृति का मन्थन करते हुए इस मान्यता के कायल हो चुके थे स्त्री–पुरूष की सार्थकता एक दूसरे का पूरक बनने में है न कि किसी का विरोधी बनने में। जिस संस्कृति ने शिव के रूप में अर्द्धनारीश्वर की परिकल्पना प्रस्तुत की हो, वह भला स्त्री को गौण कैसे मान सकती है। गाँधी जी भारतीय संस्कृति के इस मूलभूत तत्व को आत्मसात कर चुके थे और यही कारण था कि उनकी दृष्टि में कुछेक शारीरिक विभिन्नताओं के अलावा बौद्धिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक स्तर पर स्त्री–पुरूष मे कोई भेद नहीं है। यही कारण था कि वे स्त्री को पुरूष से किसी भी दृष्टि से हीन, निम्न समझने को कभी सहमत नहीं हुए।

उन्नीसवीं सदी में बाल–विवाह और बाल–विधवा परस्पर जुड़ी हुयी समस्याएं थी। पाँच से दस साल की उम्र में ब्याह दी गयी लडकियाँ बदकिस्मती से दो तीन साल के अन्दर विधवा हो जाती थीं, तो वे ही बाल–विधवा के रूप में जानी जाती थी। उम्र बढ़ने के साथ–साथ वे ही फिर वयस्क विधवा हो जाती थी। हालाँकि हिन्दू समाज के निचले तबके में ऐसी विधवाओं का पुनर्विवाह हो जाता था, लेकिन उच्च वर्ग या जिसे फिर सवर्ण वर्ग कहते हैं, उसमें ऐसी बाल–विधवाओं को आजीवन विधवा बनकर रहना पड़ता था, और इस वर्ग ने इसे पुण्य एवं धर्म का श्रेष्ठ रूप दे रखा था। विधावाओं के पुनर्विवाह को लेकर गाँधीजी जितने ही गम्भीर एवं लड़ाकू थे, आज स्त्री–विमर्श के संदर्भ में उनकी उतनी ही कम चर्चा की जाती है।

यहाँ एक बात विशेष रूप से गौरतलब हैं कि गाँधी जी सच्चे मन से, दृढ़ता के साथ विधवा–विवाह के पक्ष में थे, किन्तु इसका मतलब ये नहीं कि वे प्रौढ़ावस्था की विधवाओं के पुनर्विवाह के हिमायती थे। गाँधी जी के अनुसार अधिक उम्र में किसी स्त्री के विधवा हो जाने पर और स्त्री द्वारा स्वेच्छा से वैधव्य–धर्म का पालन करने पर उसकी प्रशंसा करने मे भी पीछे नहीं थे। 21 फरवरी, 1926 के 'नवजीवन' वाले लेख में उन्होंने लिखा था–''जहाँ आत्मिक विवाह हीं नहीं हुआ, वहां आत्मिक विवाह के लिए अवकाश हीं नहीं। आत्मिक विवाह तो सावित्री ने किया, सीता ने किया, दमयन्ती ने किया उनके विषय में हम यह कल्पना भी नहीं कर सकते, कि वैधव्य प्राप्त होने पर वे पुनर्विवाह करती।'' ''मेरा विश्वास (गाँधी जी का) है कि सच्ची हिन्दू विधवा एक रत्न हैं। वह मनुष्य जाति को हिन्दू धर्म की एक अमूल्य भेंट है। रमाबाई राना डे ऐसी ही थीं। परन्तु बाल विधवाओ का अस्तित्व हिन्दू समाज में रमाबाई जैसी बहनों का अस्तित्व भी किसी तरह कम नहीं कर सकता।[3]

गाँधी जी बाल–विवाह जैसी कुत्सित प्रथा को मिटाने के लिए भी लोकमत को जगाने की देशव्यापी मुहिम चलाते रहे। देश में जहाँ से भी उन्हें ऐसी वारदातों की खबरें मिलती, वे उसे 'यंग इंडिया'' या 'नवजीवन' जैसे पत्रों में छापते या फिर अपने भाषणों में उनका उल्लेख करते ताकि समाज में इसके विरूद्ध जागरूकता पैदा हो। विभिन्न प्रकार की दमनकारी रूढ़ियो से मुक्ति के लिए स्त्रियाँ केवल पुरूषों की मोहताज न होकर, खुद इसके लिए आगे बढ़े, इसका प्रयास गाँधी जी हमेशा करते रहे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गाँधी जी ने स्त्री शिक्षा, बाल–विवाह, विधवा विवाह, जैसे मुद्दों पर काफी ध्यान दिया, किन्तु स्त्रियों से जुड़ा सवाल जो अब तक उपेक्षित रह गया था, वह था 'देवदासी प्रथा'। गाँधी जी देवदासी प्रथा के लिए लाचार स्त्रियों की दशा पर केवल लिखने, आँसू बहाने तक सीमित नहीं रहे, अपितु इसका उन्होंने चरखे के रूप में ठोस विकल्प प्रस्तुत किया। चरखे के जरिये सूत कात–बुनकर ये औरतें आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी बन सकती थीं। दूसरी बात की गाँधी जी ने उन स्त्रियो को जो, सतवन्ती–पतिव्रता की लक्ष्मण रेखा में रहकर इन स्त्रियो की घृणा की दृष्टि से देखती थी, इनका मददगार बनाने की गुहार लगाकर शुचिता और पतिता की कथित दीवार को भी ध्वस्त करने की तरकीब पेश की जो वाकई सामाजिक दृटि से बड़ी क्रांतिकारी बात थी। जिस तरह गाँधी जी ने हिन्दू धर्म की सही–सही व्याख्या करके अस्पृश्चता को गलत, अनुचित सिद्ध किया, उसकी तरह उन्होंने धर्म के ठेकेदारों को फटकारते हुए इन देवदासियों को भी गर्हित जीवन से मुक्त कराने का आह्वान किया।

अधिकार कर्तव्य–पालन के फलस्वरूप ही प्राप्त होते हैं, इसलिए स्वतंत्रता के बाद भारत की स्त्रियों की राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरूषों के समान ही सब सुविधाएँ उपलब्ध हो गयी। स्मरणीय है कि इस विषय में पुरूषों की ओर से कभी कोई विरोध नहीं हुआ। इसलिए यूरोप तथा अन्य देशों की स्त्रियो की तरह भारत की स्त्रियों को अपने अधिकार की प्राप्ति के लिए अलग से कोई लड़ाई लड़ने की जरूरत नहीं पड़ी।[4]

हमने देखा है कि गाँधी जी ने भारतीय स्त्रियों के समक्ष हमेशा सीता, सावित्री, द्रौपदी, मीरा जैसी स्त्रियों का आदर्श रखा, क्योंकि ये स्त्रियाँ अपने तेजस्वी, निर्भीक साहसी व्यक्तित्व के कारण उस धारणा का खंडन करती हैं जिसके अनुसार स्त्री मात्र भोग्या है।

गाँधी जी ने स्त्री–शक्ति का स्रोत उसकी सदगी और मन की दृढ़ता में देखा और इस स्रोत के प्रति उन्हें वे निरन्तर जागरूक करते रहे। गाँधी जी के लिए स्त्री का सच्चा सौन्दर्य उसके चरित्र, बल और शील में था। गाँधी जी कहते हैं–''आप अपनी सुगन्ध फैलाना चाहती हैं तो वह आपके हृदय–कुसुम से ही निकलनी चाहिए। आपका हृदय–कुसुम खिलेगा तो आप अमुक पुरूष का मन मोहने के बजाय सम्पूर्ण मानव–जाति को ही अपनी सुगन्ध से मुक्त कर देगी। यही आपका जन्मसिद्ध अधिकार है।[5]

यह कहा जा सकता है कि अभी भारत में महिलाओं को राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में सशक्त होने के लिए लम्बा सफर तय करना हैं। वक्त की जरूरत महिलाओं के कल्याण की न होकर उनके विकास की हैं, अनुदान के सथान पर विधि–सम्मत अधिकार की है, मदद न होकर उनके सशक्तीकरण की है, संरचनात्मक समायोजन न होकर संरचनात्मक बदलाव की है। समान सामाजिक सुरक्षा की न होकर सामाजिक और लैंगिक न्याय की है। अगर महिलाओं को मौजूदा हालात में अपना अस्तित्व बचाने के साथ ही स्वयं का विकास भी करना है तो ये सभी बदलाव वक्त की जरूरत है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. उप.पृ. 199, यह लेख 22.6.1907 को 'इंडियन ओपिनियन गुजराती में छपा था।
2. स.गां.वां. खण्ड–24, पृ0–284, प्रकाशन विभाग व सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार।
3. स.गां.वां. खण्ड–32, उप पृ0–325–26, गाँधी जी ने 1926 में साबरमती आश्रम की स्त्रियों की प्रातः सात बजे की प्रार्थना–सभाओं में प्रवचन दिये थे, ये उसी के कुछ अंश है।
4. महात्मा गाँधीः *जीवन और चिन्तन*, ले.जी.वी.कृपलानी, पृ0–430।
5. उपर्युक्त, पृ0–429।
6. आत्मकथा (सत्य के प्रयोग)। महात्मा गाँधी, पृ–319–20
7. सं.गां.वा. खंड–6, पृ–31–32, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार।
8. कनक तिवारीः *हिन्द स्वराज का सच*, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई दिल्ली–2010, पृ.–86–87।

9. गिरिराज किशोरः *हिन्द स्वराजः गाँधी का शब्द अवतार*, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई दिल्ली–2009, पृ–55–56
10. अनिल दत्त मिश्रः *गाँधी एक अध्ययन*, पियर्सन पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.–224, 225, 226
11. श्री भगवान सिंह, *गाँधी और दलित भारत–जागरण*, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली–2010।
12. डा. दुर्गादत्त पाण्डेय, *गाँधी दर्शन के मूल बिन्दु*, शेखर प्रकाशन, इलाहाबाद–2006।